ये भी हैं खोजी वैज्ञानिक

प्रमोद भार्गव

भारत में प्रतिभाओं की कमी नहीं है, लेकिन शालेय शिक्षा व कुशल-अकुशल की परिभाषाओं से ज्ञान को विभाजित करने की विवशता के चलते केवल कागज़ी काम से जुड़े डिग्रीधारी को ज्ञानी और परंपरागत ज्ञान आधारित कार्य प्रणाली में दक्षता रखने वाले शिल्पकार और किसान को अज्ञानी व अकुशल ही माना जाता है। यही कारण है कि हम देशज तकनीक व स्थानीय संसाधनों से तैयार उन आविष्कारों और आविष्कारकों को सर्वथा नकार देते हैं जो ऊर्जा, सिंचाई, मनोरंजन और खेती की वैकल्पिक प्रणालियों से जुड़े होते हैं जबकि जलवायु संकट से निपटने और धरती को प्रदूषण से छुटकारा दिलाने के उपाय इन्हीं देशज तकनीकों में निहित हैं।

औद्योगिक क्रांति ने प्राकृतिक संपदा का अटूट दोहन कर वायुमण्डल में कॉर्बन डाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ाकर दुनिया के पर्यावरण को जिस भयावह संकट में डाला है उससे मुक्ति के स्थायी समाधान अंततः देशज तकनीकों से वजूद में आ रहे उपकरणों व प्रणालियों में ही तलाशने होंगे। भारतीय वैज्ञानिक संस्थाएं और उत्साही वैज्ञानिकों को नौकरशाही के चंगुल से मुक्ति भी इन्हीं देशज मान्यताओं को बढ़ावा देने से ही मिलेगी।

मोहम्मद सइदुल्लाह

'घर का जोगी जोगड़ा, आन गांव का सिद्ध' कहावत विज्ञान सम्बंधी नवाचार प्रयासों के प्रसंग में भी खरी उतरती है। नकार की इसी परंपरा के चलते हम आजादी के बाद मौलिक आविष्कार करने वाला, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का एक भी वैज्ञानिक नहीं दे पाए जबकि इस बीच हमारे संस्थान नई खोजों के लिए संसाधन के स्तर पर मज़बूत हुए हैं। जाहिर है कि हमारे तरीके में कहीं खोट है।

दुनिया में वैज्ञानिक और अभियंता पैदा करने की दृष्टि से भारत का तीसरा स्थान है। लेकिन विज्ञान सम्बंधी साहित्य सृजन में केवल पाश्चात्य लेखकों को जाना जाता है। पश्चिमी देशों के वैज्ञानिक आविष्कारों से ही यह साहित्य भरा पड़ा है। इस साहित्य में न तो हमारे वैज्ञानिकों की चर्चा है और न ही आविष्कारों की। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि हम खुद अपने आविष्कारों को प्रोत्साहित नहीं करते हैं, उन्हें मान्यता नहीं देते हैं।

इन आविष्कारकों के साथ हमारा व्यवहार भी कमोबेश अभद्र ही होता है। समाचार-पत्रों के पिछले पन्नों पर यदा-कदा ऐसे आविष्कारकों के समाचार आते हैं जिनके प्रयासों को यदि प्रोत्साहित किया जाए तो हमें राष्ट्र-निर्माण में बड़ा सहयोग मिल सकता है।

उत्तरप्रदेश के हापुड़ में रहने वाले रामपाल नाम के एक मिस्त्री ने गंदे नाले के पानी से बिजली बनाने का दावा किया है। उसने यह जानकारी आला अधिकारियों को भी दी। सराहना की बजाय उसे हर जगह फटकार मिली। लेकिन ज़िद के आगे किसकी चलती है। आखिरकार रामपाल ने

अपना घर साठ हजार रुपए में गिरवी रख दिया और गंदे पानी से ही दो सौ किलो वॉट बिजली पैदा करके दिखा दी। रामपाल का यह कारनामा किसी चमत्कार से कम नहीं है। जब पूरा देश बेमियादी कटौती की हद तक बिजली की कमी से जूझ रहा है, तब इस वैज्ञानिक उपलब्धि को उपयोगी क्यों नहीं माना जाता? इस आविष्कार में गंदे पानी के निस्तार के साथ बिजली की उपलब्धता जुड़ी है।

इसके बाद रामपाल ने एक हेलीकॉप्टर भी बनाया। लेकिन उसे प्रोत्साहन देने की बजाय कानूनी पचड़ों में उलझा दिया गया। अपने सपनों को साकार करने के फेर में घर गिरवी रखने वाला रामपाल अब गुमनामी में है।

बिहार के मोतिहारी के मठियाडीह में रहने वाले सइदुल्लाह का आविष्कार भी किसी करिश्मे से कम नहीं है। उन्होंने पानी की सतह पर चलने वाली साइकिल बनाने का चमत्कार कर दिखाया। उनके इस मौलिक सोच के पीछे वजह यह थी कि उनका गांव हर साल बाढ़ की चपेट में आ जाता है। नतीजतन लोग लाचार होकर जहां के तहां फंसे रह जाते हैं। सइदुल्लाह इस साइकिल का सफल प्रदर्शन 1994 में मोतिहारी की मोतीझील में, 1995 में पटना की गंगा नदी में और 2005 में अहमदाबाद में कर चुके हैं। इसके लिए उन्हें तत्कालीन राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम ने सम्मानित और पुरस्कृत भी किया था।

इस पुरस्कार से उत्साहित होकर सइदुल्लाह ने पानी पर चलने वाले अद्भुत रिक्शे का भी निर्माण कर डाला। यह रिक्शा पानी पर बड़े आराम से चलता है। नए अनुसंधान के दीवाने इस वैज्ञानिक ने पुरस्कार की सारी राशि रिक्शा निर्माण में लगा दी। बाद में नए अनुसंधानों के लिए सइदुल्लाह ने अपने पुरखों की जमीन भी बेच दी और चाबी वाले पंखे, पंप, बैटरी-चार्जर और कम ईंधन खर्च वाले छोटे ट्रेक्टर का निर्माण करने में सारी जमा पूंजी खर्च दी। पर सइदुल्लाह द्वारा निर्मित उपकरणों को वैज्ञानिक मान्यता नहीं मिली। बेचारा कंगाल हो गया। नवाचार के नए प्रयास भी बाधित हो गए। लिहाज़ा उसका हौसला पस्त हो गया। जबकि ऐसे जिज्ञासु को आर्थिक मदद के विशेष प्रावधान होने चाहिए।

बिहार के वैशाली ज़िले में मंसूरपुर गांव के एक साधारण विद्युत उपकरण सुधारक कारीगर राघव महतो ने मामूली लागत से अपने कम्यूनिटी रेडियो स्टेशन का निर्माण कर डाला। और फिर उस पर सफल प्रसारण भी शुरू कर दिया। 15 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में यह केन्द्र स्थानीय लोगों का मनोरंजन कर रहा है। एकाएक विश्वास नहीं होता कि इस प्रकार के प्रसारण के लिए जहां कंपनियां लाखों रुपए खर्च करती हैं, इंजीनियर-तकनीशियनों को रखती हैं, वही काम एक मामूली पढ़ा-लिखा विद्युत मिस्त्री अपनी खोज के बूते कर रहा है। लेकिन अंग्रेज़ों से उधार ली हमारी अकादमिक व्यवस्था ऐसी है कि विज्ञान के प्रायोगिक व व्यावहारिक रूप को बढ़ावा नहीं मिलता।

उत्तर प्रदेश के ललितपुर ज़िले के भैलोनी लोध गांव में मंगल सिंह नाम का एक ऐसा ग्रामीण अन्वेषक है जिसने 'मंगल टर्बाइन' नाम से एक ऐसा आविष्कार किया है जो सिंचाई में डीज़ल व बिजली की कम खपत का बड़ा व स्थानीय उपाय है। मंगल सिंह ने अपने इस अनूठे उपकरण का पेटेंट भी करा लिया है। यह चक्र उपकरण जल-धारा के प्रवाह से गतिशील होता है और फिर इससे आटा चक्की, गन्ना पिराई व चारा कटाई मशीन आसानी से चला सकते हैं। इस चक्र की धुरी को जनरेटर से जोड़ने पर बिजली का उत्पादन भी किया जा सकता है। अब इस तकनीक का विस्तार बुंदेलखण्ड क्षेत्र में तो हो ही रहा है, उत्तराखण्ड में भी इसका इस्तेमाल शुरू हुआ है। यहां की पहाड़ी महिलाओं को पानी भरने की समस्या से छुटकारा दिलाने के लिए नलजल योजना के रूप में इस तकनीक का

राघव महतो

उपयोग सेंदूर गांव में शुरू भी हो गया है।

उत्तर प्रदेश के गोण्डा के सेंट ज़ेवियर्स स्कूल में पढ़ने वाले छात्र ऋषीन्द्र विक्रम सिंह, आजान भारद्वाज, निखिल भट्ट और हिदायतुल्ला सिद्दिकी ने मिलकर दीमक से बचाव का स्थायी समाधान खोज निकालने का दावा किया है। इन बाल वैज्ञानिकों ने इस कीटनाशक का प्रदर्शन अखिल भारतीय बाल विज्ञान कांग्रेस में भी किया।

इन छात्रों ने विज्ञान कांग्रेस के बैनर तले गोण्डा ज़िले में किसानों के साथ एक अध्ययन में पाया कि भारत-नेपाल तराई क्षेत्र में दीमकों के प्रकोप से हर साल पैदावार का बड़ा हिस्सा बर्बाद हो जाता है। दीमकों पर नियंत्रण के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला रसायन क्लोरोपाईरीफॉस दीमकों पर प्रभावी नियंत्रण में नाकाम साबित हो रहा है। साथ ही इसका इस्तेमाल मिट्टी की इकॉलॉजी को भी तबाह कर देता है। इससे उत्पादकता पर प्रतिकूल असर पड़ता है। इस कीटनाशक के इस्तेमाल से किसानों के मित्र कीट व अन्य जंतु (केंचुआ आदि) भी नष्ट हो जाते हैं।

इन बाल वैज्ञानिकों ने कीटनाशी कवक*बावेरिया वैसियाना* के प्रयोग से दीमकों की समस्या के स्थायी समाधान की खोज की है। इकोसिस्टम का हिस्सा होने के कारण*बावेरिया वैसियाना* सभी तरह के दुष्प्रभावों से मुक्त है। इसका एक बार प्रयोग खेत में दीमकों की बस्ती को अण्डे देने वाली रानी दीमक समेत खत्म कर देता है। नतीजतन भविष्य में इनके फिर से पनपने की संभावना समाप्त हो जाती है। यह कवक दूसरे रसायनों से ज़्यादा असरदार और सस्ता होने के कारण बेहद फायदेमंद है। इसकी उपयोगिता साबित हो जाने के बावजूद इस बाल अनुसंधान को वैज्ञानिक मान्यता कब मिलती है यह कहना मुश्किल है।

बिहार के हजारीबाग ज़िले के 30 ग्रामों का विस्थापन कर बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपना उद्योग लगाने की जोड़-तोड़ में हैं। ग्रामीण इन उद्योगों का विरोध कर रहे हैं। इनकी मदद के लिए कुछ इंजीनियर व तकनीशियन भी तैयार हो गए हैं। इन कारीगरों ने इन्हें कोयले से बिजली बनाने की छोटी मशीनें मुहैया कराई हैं और इनके समूह बनाकर संस्थाएं पंजीकृत की हैं। नतीजतन केन्द्र सरकार से आर्थिक मदद भी मिलने लगी है। इस बिजली का उपयोग खेती में हो रहा है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक रहे बनवारीलाल शर्मा भी उत्तराखण्ड में किसानों की व्यावहारिक मदद के लिए आगे आए हैं। उन्होंने नदियों के पानी से छोटे पैमाने पर बिजली उत्पादन का सिलसिला शुरू किया है। लोग इससे स्थानीय स्तर पर लाभान्वित हो रहे हैं। इन तकनीकों की खासियत यह है कि इनसे न तो लोगों को उजड़ना पड़ रहा है और न ही पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है।

ज़रूरत है नवाचार के इन प्रयोगों को प्रोत्साहित करने की। इन देशज विज्ञानसम्मत टेक्नॉलॉजी की मदद से हम खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर तो हो ही सकते हैं, किसानों और ग्रामीणों को स्वावलंबी बनाने की दिशा में भी कदम उठा सकते हैं। लेकिन देश के होनहार वैज्ञानिकों पर शैक्षिक अकुशलता का ठप्पा लगाकर हमारी नौकरशाही इनके प्रयोगों को मान्यता मिलने की राह में प्रमुख बाधा है। इसके लिए शिक्षा प्रणाली में भी समुचित बदलाव की ज़रूरत है। हमारे यहां पढ़ाई की प्रकृति ऐसी है कि उसमें खोजने-परखने, सवाल-जवाब करने और विश्लेषण की छूट की बजाय तथ्य, आंकड़े और सूचनाएं रटवाई जा रही हैं जो वैज्ञानिक चेतना व दृष्टि विकसित करने में सबसे बड़ी बाधा है। यही कारण है कि हमारे देश में नौ सौ से अधिक वैज्ञानिक संस्थानों और देश के सभी विश्वविद्यालयों में विज्ञान व तकनीक के अनुसंधान का काम होने के बावजूद कोई भी संस्थान स्थानीय संसाधनों से सरल उपकरण बनाने का दावा करता दिखाई नहीं देता। हां, टेक्नॉलॉजी हस्तांतरण के लिए कुछ देशी-विदेशी कंपनियों से बीस हज़ार ऐसे समझौते ज़रूर किए गए हैं जो अनुसंधान के मौलिक व बहुउपयोगी प्रयासों को ठेंगा दिखाने वाले हैं। इसलिए शिक्षा को संस्थागत ढांचे और किताबी ज्ञान से उबारने की ज़रूरत है। ***(स्रोत फीचर्स)***